Review of Literature

ISSN: 2347-2723
Impact Factor : 2.0260(UIF)
Volume - 4 | Issue - 12 | July - 2017

शीर्षकः नव साम्राज्यवाद की वापसी के बीच स्वदेशी चिंतन की तलाश (भूमण्डलीकरण की रजत जयंती के दौर में)

Dr. Krishan Kumar
SUS Govt. College , Matak Majri , Indri.

प्रस्तावना :

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया यह भ्रम पैदा करती है कि संसार के लोग विकास और तरक्की के लिए एक दूसरे जुड़ रहे हैं। संसार एक वैश्विक गांव बन रहा है और हम एक दूसरे के सुख दुःख में शरीक हो रहे हैं। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को आगे बढ़ाने में हाथ बढ़ा रहा है। विकसित देश पूंजी और प्रौद्योगिकी के बल पर विकासशील देशों के लोगों के लिए मूलभूत सुविधा मुहैय्या करवायेंगे एवं उनके जीवन स्तर में गुणवत्ता बढ़ेगी। 'वसुदैवः कुटुम्बकम् की भावना का प्रसार होगा। यह मानवीय इतिहास में निर्णायक उछाल होगी।

लेकिन भ्रम की उम्र लम्बी नहीं होती। हम देखते हैं कि विश्व स्तर पर चालाक लोगों और धनी देशों ने अर्थव्यवस्था के नियम इस ढ़ंग से लिखवाये हैं कि अमीर और अमीर बनता गया और गरीब और गरीब। यह प्रक्रिया पूंजीकरण और कंगालीकरण को साथ साथ जन्म दे रही है। दरअसल एक सपन्न वर्ग ही अपने का व्यापारिक एवं वित्तिय हितों के लिए एक दूसरे जुड़ रहा हैं। श्रम पर पहरेदारी बिठा उसकी गतिशीलता को कम किया जा रहा है और पूंजी को आवारा घूमने के लिए खुला छोड़ दिया है। यह दौर पूंजी के अन्तर्राष्ट्रीयकरण और श्रम के राष्ट्रीयकरण का है।

भारत में यह कहानी[1] विविधत रूप से 1991 में शुरू होती है, हांलकि इसकी पटकथा पहले लिखी जा चुकी थी। चंद लोग एकाएक उदारीकरण के गीत गाने लगे और शाइनिंग इंडिया के नारे मेट्रो स्टेशन एयरपोर्ट, शोपिंग माल और फाईव स्टार होटलों पर दिखाई देने लगे। शासन वर्ग और इससे बुद्धिजीवियों ने प्रसार किया कि हम 2030 तक दुनिया की पांच बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में शामिल होने जा रहे हैं। रेटिंग एजेंसियों के अनुसार दुनिया में हमारी साख बढ़ रही है, हमारा बाजार बढ़ रहा है। विश्वगुरू की हमारी अवधारणा ज्ञान की बजाय बाजार के आधार पर बन रही है। हमारी काल्पनीक चमक धमक को झटका तब लगा जब 2008 में अर्जुन सेन गुप्ता कमेटी की रिपोर्ट आई। कमेटी ने बताया कि इस मूल्क में 66 प्रतिशत लोग 20 रूपये प्रतिदिन पर गुजारा करते है। आवाम का अधिकांश हिस्सा मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। दूसरी ओर ऐसे लोग हैं जो अपनी बीवी के जन्मदिन पर 563 कमरों से सुसज्जित एंटिला भेट करते हैं, ऐरोप्लेन गिफ्ट करते है। सिल्वर जुबली के इस दौर में भारत ओर इंडिया[2] के बीच की खाई निरंतर चौड़ी और गहरी होती जा रही है।

साम्राज्यवादी देशों में भूमण्डलीकरण की आड़ में एक नई रणनीति तैयार की है। उनकी सरकारों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने मिल बैठकर ऐसी परिस्थितियां तैयार की है कि गरीब मुल्कों की सरकारों को कर्ज के जाल में फसाया जाए ओर फिर उनकी दीर्घकालीन योजनाओं के लिए अल्पकालीन ऋृण देकर अपने ऊपर आश्रित बनाया जाए। आश्रित मुल्क की शर्त नहीं होती। समय के साथ साथ उसने अपनी अर्थव्यवस्था को उदार और लचीला बनाया पड़ता है। सटोरिया और आवारा पूंजी[3] इसकी ताक में होती है और उसकी अर्थव्यवस्था का बहुत बड़ा हिस्सा हड़प जाती है। एक बार जब कोई देश स्टोरिया पूंजी के चक्रव्यूह में फसं जाता है। तो वहां से निकलना बहुत मुश्किल होता है। अमेरिकन चिंतक नोम चॉम्स्की बताते है कि प्रतिदिन एक खरब डॉलर इधर से उधर होते है। इसका मात्र पांच प्रतिशत वास्तविक अर्थव्यवस्था से जुडा है बाकी सटटा है 1970 में लौटे तो 90 प्रतिशत वास्तविक अर्थव्यवस्था से जुडा हैं और दस प्रतिशत सट्टा है। आज 1936 में कहे जाने मेनार्ड कींस के शब्द कितने सटीक है कि यदि सट्टेबाजी उद्योग की स्थायी धारा के उपर उठने वाले बुलबुले के समान हो तो कोई नुकसान नहीं होता लेकिन हालात तब बीमार हो जाते है जब उद्योग खुद ही सट्टेबाजी के भवर उपर तैरने वाला बुलबुला बन जाता हैं। जब किसी देश का विकास जुआघर का उपउत्पाद बन जाता है तब पूरी संभावना होती है कि बात बिगड जाए। यानी पूंजी का माल में बदलने बिना निरन्तर बढते जाना। मैगडाफ ने इसे यूं बयां किया है कि मौजूदा दौर में वित का केन्द्र उत्पादन की बजाय सट्टेबाजी की और जा रहा है। विकासशील देशों के लिए यह खतरे की घंटी है एक तो उन्हें विकसीत देशो के लिए मुकाबले विकास को आधी मंजिल भी पूरी नहीं की और दूसरे विकास के इस मॉडल[4] के लिए बहुत मात्रा में पूंजी की दरकार है। साम्राज्यवादी देश अपनी योजनाओं का विस्तार विचारधारात्मक एजेंडे के बल पर करतें है। ब्रिटेन के पूर्व प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर के राजनीतिक सलाहकार रह चुके कूपर ने 'रक्षात्मक साम्राज्यवाद'[5] का सिद्धांत प्रथम विश्व के सामने प्रस्तुत किया। इसकी प्रस्तावना स्वयं टोनी ब्लेयर ने लिखी है। अपनी पुस्तक में कूपर साहब इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि तीसरी दुनिया में लोकतंत्र असफल हो चुका है, वहां कई प्रकार के जातीय और धार्मिक संकट पैदा हो रहे हैं। इसलिए 19 वीं सदीं से भी अधिक साम्राज्यवाद–उपनिवेशवाद की आवश्यकता है। इस मानसिकता का परिचय 2015 में इंटरनेट पर समान अधिकार को लेकर फेसबुक मार्क एडीसन का ट्वीट से मिलता हैं कि न्यूट्रैलिटी पर भारत का फैसला गलत है, ये देश ब्रिटिश के अधीन होता तो अच्छा होता। धनी देश और उनकी श्वेत जातियां बार बार यह प्रचारित करती रहती है कि एशिया और अफ्रीका के लोग असभ्य और अविकसित है। इन्हें विकसित करने के लिए बाहरी पूंजी और प्रौद्योगिकी की जरूरत है। जरूरत हैं कि

विकासशील देशों की सरकारें निवेश के लिए माकूल माहौल तैयार करें। साम्राज्यवादी देश पहले फौजी दस्ते भेजते थे, फिर वहां के संसाधनों पर कब्जा करते थे। यह साम्राज्यवादी देशों की साफ सुथरी तस्वीर है कि उन्हें संसाधनों के लिए खून खराबा नहीं करना पड़ता। पूंजी निवेश और कुछ नीतिगत फैसले ही काफी है। संसाधनों पर पहले भी उनका कब्जा था, आज भी उनका कब्जा बढ़ता जा रहा है।

आज भूमण्डलीकरण माइड+मनी+फसल का गेम बनकर रह गया है जिसमें विकसित देशों की जीत और विकासशील देशों की हार निश्चित है। यह बकरी और शेर की लड़ाई का ड्रामा है। साम्राज्यवाद देश डार्विन के प्राणीजगत के सिद्धांत–सर्वोत्तम को ही जीने का अधिकार हैं को सामाजिक जगत पर लागू करना चाहते है। यह मनुष्यों की ऐतिहासिक समझ, तार्किकता और मूल्यबोध का विपरीत दिशा में मोड़ना है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। वह अन्य प्राणियों क तरफ के ताकत के बल पर नहीं बल्कि सहयोग प्रेम और बुद्धि के बल पर आगे बढ़ा है। सन् 1937 में विस्टन चर्चिल में फिल्स्तीनियों के बारे में कहा था मैं यह नहीं मानता कि नांद में कुत्ते का नांद पर अंतिम अधिकार है, फिर चाहे वह कितने समय से क्यों न सोया पड़ा हो। मैं इस अधिकार को स्वीकार नहीं करता हूं। उदाहरण स्वरूप मैं यह नहीं मानता हूं कि अमेरिका के रेड इंडियनों या आस्ट्रेलिया के अश्वेतो के प्रति कोई बड़ा अन्याय किया है। मैं यह स्वीकार नहीं करता हूं कि अगर एक ताकतवर नस्ल, एक उच्च श्रेणी की नस्ल, सांसारिक रूप से ज्यादा समझदार नस्ल में आकर उसका स्थान ले लिया तो कुछ गलत हुआ है।

नवसाम्राज्यवाद् हमें किस ढंग से लूट रहा है, इसका मुकम्मल उदाहरण महाराष्ट्र सरकार और एनरॉन कंपनी के बीच हुआ बिजली समझौता है जिसके तहत महाराष्ट्र सरकार 30 अरब डॉलर भुगतान करने के लिए बाध्य है। एनरॉन ने जो बिजली पैदा की, वह बहुत महंगी थी। महाराष्ट्र सरकार ने निर्णय लिया कि वह कंपनी से बिजली खरीदने की बजाय निश्चित शुल्क देती रहेगी। बिजली पैदा करने वाली कंपनी को महाराष्ट्र सरकार हर साल 22 करोड़ डॉलर इसलिए अदा करती है कि वह बिजली पैदा न करे। आज एनरॉन बंद हो चुकी है तो बेकटेल और जनरल इलेक्ट्रिक ने महाराष्ट्र सरकार पर 5.6 विलियन डॉलर का दावा ठोक दिया है, क्योंकि इतनी पूंजी उन्होंने एनरॉन में लगाई थी। विकसित देशों का एकमात्र उद्देश्य विकासशील देशों को लुटना है। 'साम–दाम–दण्ड–भेद कोई भी नीति अपनाई जाये, विकासशील देशों की लगाम हमेशा उनके हाथ में रहती है। ऐसी व्यवस्था बन गई है कि हम उपनिवेशावादी देशों के कर्ज में डूब रहे है। वे मद्द के नाम कर्ज और विकास के नाम पर अप्रचलित प्रौद्योगिकी स्थानांतरित कर रहे है। हम हर साल 382 अरब डॉलर केवल ब्याज के रूप में चुकाने के लिए मजबूर है। हैरी मैगडॉक ने एज ऑफ एम्पीरियलिज्म में दिखाया की विकासशील देशों में किये गये अमेरिका प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के परिणामस्वरूप वायस आने वाला धन विदेश में भेजे गए धन का तीन गुणा है। बराक ओबामा ने मई 2015 में नाइक कम्पनी में दिए गए भाषण में कहा था हमें यह निश्चित करना होगा कि जब हमारी अर्थव्यवस्था सक्षम है, हम दुनिया में होने वाले व्यापार के नियम लिखे। हम कयास लगा सकते हैं कि ये नियम कितने उदार और समानता पर आधारित होगे और सम्प्रभुता को कैसे तार–तार करेंगे। किसी राष्ट्र के लिए सम्प्रभुता को गवाने का मतलब है, अपनी स्वतंत्रता को खोना है। अरूधति राय 'नव साम्राज्य के नये किस्से' में लिखती है – भूमण्डलीकरण का सम्पूर्ण उद्देश्य गैर बराबरी को संस्थाबद्ध करना कर देना है। ऐसा न होता तो अमेरिका बांग्लादेशी द्वारा सिले गए पहनावे पर इंग्लैण्ड में बने पहनावे से 20 गुना टैक्स क्यों लगता है। ऐसा न होता तो जो देश दुनिया का 90 फीसदी को कोकोआ पैदा करते हैं – वे 5 प्रतिशत चाकलेट क्यों बनाते? ऐसा न होता तो आइवरी कोस्ट और घाना जैसे कोकोआ उत्पादक देश अगर चाकलेट बनाने की कोशिश करते है तो उन्हें टैक्स के जरिए बाजार से बाहर क्यों निकाल दिया जाता है। ऐसा नहीं होता तो जो देश अपने किसानों की सब्सिडी पर प्रतिदिन एक अरब डॉलर खर्च करते है, वे भारत जेसे गरीब देशों से यह मांग क्यों करते है कि वे अपनी समस्त कृषि सहायता राशि हटा ले जिसमें सब्जीसाइन्ड बिजली भी शामिल है।

अंधेरा कितना ही घना क्यों न हो लेकिन आदमी की उम्मीद और कल्पना शक्ति से बड़ा नहीं होता। उसे तलवार से नहीं विचार से काटा जाता है। इतिहास बताता है कि जिस समाज में स्वप्नदर्शी / बुद्धिजीवी पैदा नहीं होते उस समाज का कोई भविष्य नहीं होता। हमारी शिक्षा प्रणाली का ढर्रा ऐसा है कि वह तोता रटंत विद्धान और ममेरी किंग नौकरशाह ज्यादा पैदा होते है। यहां मातृभाषाओं की बजाय विदेशी भाषाओं को ज्यादा महत्व दिया जाता है। दुनिया में हमारी हैसियत चिंतक की बजाय अनुवादक की बन रही है। अनुवादक में प्रयोग करने की शक्ति नहीं होती, वह उस पर आश्रित होता है। हम किसी भी क्षेत्र में नया नहीं कर पा रहे। हम पश्चिमी के प्रयोग और उपलब्धियों को अपने देश में आरोपित करना चाहते है। लेकिन उनकी प्रक्रिया को पकड़ना नहीं चाहते।

रविन्द्रनाथ टैगोर सचेत करते हुए कहा था – कि आप दूसरों से ज्ञान उधार ले सकते है। लेकिन सभाव नहीं। अपने शिक्षण के अनुकरण शील दौर में हम जरूरी और गैर जरूरी में अंतर नहीं देख पाते, न हम समझ पाते है कि एक देश से दूसरे देश में क्या स्थांतरित किया जा सकता है और क्या नहीं किया जा सकता।

हमें सोचना होगा कि यूरोप में ही 'रेनेसा' क्यों पैदा हुआ। वहां दो सौ वर्षों तक विज्ञान और धर्म के बीच रस्साकशी चलती है। वैज्ञानिक और प्राकृतिक नियमों को स्थापित करने में बुद्धिजीवियों ने जान की बाजी लगाई है। ब्रूनो और कॉयरनिकस साक्षात उदाहरण हैं। उन्होंने चर्च के आदेशों को मानने से इनकार कर दिया। परिणामस्वरूप ब्रूनो को जला दिया और कोपरनिकस को जेल में डाल दिया। लेकिन बुद्धिजीवियों संस्कृतिकर्मियों ने हार नहीं मानी। सारांशः यह कि पश्चिम में चर्च की सत्ता को पराजित करके, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बल पर आगे बढ़ा है। वहां हर काम तर्क की कसौटी पर कसा जाता है। कांट ने कहा था कि ज्ञान मनुष्य के दिमाग की पैदाइश हैं, उसका काम जीवन और जगत की व्याख्या करना है। ज्ञान तर्क के सहारे आगे बढ़ता है। मसलन आज बहुत से रोगों के इलाज के लिए गौमूत्र थैरेपी लेने का सुझाव दिया जाता है तो पहले हमें वैज्ञानिक प्रयोगों से यह प्रमाणित करना चाहिए कि गौमूत्र में वे कौन से जीवाणु है, जो अन्य पशुओं के मलमूत्र में नहीं है, जो हमारी रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। हमने आस्था और वैज्ञानिकता को अलग अलग करना चाहिए। आस्था व्यक्तिगत मसला है और वैज्ञानिकता में सामूहिकता का भाव शामिल है। प्रत्येक व्यक्ति की आस्था अलग अलग हो सकती है। लेकिन वैज्ञानिक नियम सब के लिए एक जैसे होते है। हमें अपने मिथकीय अतीत में आधुनिक वैज्ञानिक नियम और थयूरी ढूंढने की बजाय वास्तिविक अतीत से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। आजकल बडे पैमाने पर धार्मिक अतर्वस्तु और उसके सार को वैज्ञानिक शब्दावली में प्रस्तुत करने का प्रचलन बढ़ रहा है। ऐसे लगता है कि धर्म और विज्ञान एकम्ऐक हो गए हैं। धर्म हमेशा आस्था को केन्द्र में लेकर चलता है और विज्ञान तर्क को। विज्ञान प्रश्न करना सिखाता है, धर्म का जोर चुप्पी पर है। विज्ञान ने बार–बार आस्था को खंडित किया है और धर्म ने खीझ करके उसके खिलाफ फतवे जारी किए है। आखिरकार दुनिया की अगुवाई और रहनुमाई करने वाला भारत कहां चूक गया। एक जमाने में पूरी दुनिया को खगोलविद्या, ज्यामिति विद्या, कामविद्या, राजनीतिक अर्थशास्त्र का पाठ पढाने वाले को आज चिंतन और ज्ञान के क्षेत्र में अच्छी नजरों से नहीं देखा जाता। दुनिया के लिए जिज्ञासा, कौतूहल और आकर्षण का केन्द्र, आज खुद अपने ही निवासियों की नजरों में बौना हो गया है। कभी विद्धानों और यात्रियों का रूख भारत की ओर होता है। आज यह रूख उल्ट ही नहीं गया बल्कि सामान्य नागरिकों की तमन्ना भी विदेशों में बसने की है। वसुदैवः कुटुम्बकम का पैरोकार खुद धर्म और जाति जैसे सामती तत्वों के आधार पर बंट रहे है।

इस दुर्दशा की व्याख्या कालचक्र, समय का फेर, कभी धूप कभी छावॅ जैसे शब्दो से नही हो सकती। यह ठोस विश्लेषण की मांग करता है।

शिक्षा आस–पास के परिवेश को समझ कर उसे अपने अनुकूल ढालने का प्रयास है। इस प्रयास में मनुष्य की सर्जनात्मक शक्ति का विस्तार होता है। वह नये–नये लक्ष्य बनाता है और उन्हें हासिल करता है। विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय इस दिशा में अहम रोल अदा करते है। तेरहवीं

सदी में यूरोप में ऑक्सफोर्ड बन रहा था और ठीक उसकी समय नालन्दा का पतन हो रहा है। यूरोप में जहां विश्वविद्यालय बन रहे थे, यहां के बादशाह किले पर किले बनाऐ जा रहे थे। साथ ही ज्ञान प्राप्ति का अधिकार एक वर्ग तक सीमित था। ज्ञान पूरे समाज का विमर्श नहीं बन पाया था। सामाजीकरण के अभाव में ज्ञान शक्ति रूप नहीं धारणा करता। हमें पड़ताल करनी होगी कि श्रम और तकनीक का इस्तेमाल करने वाली कामगार जातियों को हेय दृष्टि से क्यों देखा जाता है। हमें अपने जातीय सिस्टम को तार–तार करना होगा जो मनुष्य को मनुष्य माने से इंकार करता है। इसने हमारी एकता और अखण्डता को आघात पहुंचाया है, बीमार मानसिकता, बीमार समाज का निर्माण करती है और अन्ततः गुलामी को आमंत्रित करती है। गुलामी की बेडियों का कसूर इतना नहीं है जितना कि उन पांव का, जिन्होंने उनके सामने आत्मसमर्पण कर दिया। बाहरी शत्रु की बजाय मनुष्य के आन्तिरक शत्रु ज्यादा ताकतवर होते है।

हम मौजूदा यथार्थ से मुंह फेरकर अतीत की स्वर्णिम व्याख्या से अपने कार्यों की इतिश्री समझते है। दुनिया का कोई समाज और समुदाय ऐसा नहीं है जिसने ऐतिहासिक गलतियां ना की हों। अतीत से हमें शिक्षा और सबक दोनों मिलते है – सार–सार गहि करै थोथा दिये उड़ाए। वह हमारी कल्पना की उड़ान, भावजगत की प्रेरणा और चिंतन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है लेकिन वस्तुगत परिवर्तन हमेशा नये चिंतन और प्रयोग की मांग करते है। हमें एक अजीब सी आदत हो गई है कि जब भी कोई देश वैज्ञानिक और सामाजिक क्षेत्र में कोई उपलब्धि हासिल करता है तो हम उसके सूत्र वेदों ओर पुराणों में ढूंढने चल पड़ते है। हम उनकी उपलब्धियों को स्वीकार नहीं कर पा रहे है और मिथकीय अतीत में जाकर उसका तोड़ ढूंढ़ना चाहते है। हम वर्तमान के बरकस अतीत को खड़ा कर देते है। हम श्रेष्ठ थे और रहेंगे दरअसल अपने हिनताबोध को छिपाने का शब्दजाल है। हमें इस माइडसेट को तोड़ने की जरूरत है। हमारे पुरखों ने जीव और जगत पर अपने ढंग और सीमा के अनुसार विचार विमर्श किया।

हमें तय करने की जरूरत है कि स्वदेशी पूंजी और उसके आकाओं का चरित्र क्या है। क्या वे निजी हितों के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ–सांठ–गांठ करने के फिराक में तो नहीं है। इंटरनेट को लेकर फेसबुक और अनिल अंबानी की कंपनी रिलायांस कम्नुनिकेशंस में गठजोड़ की बातें चल रही थी। फेसबुक के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर ने जब भारत के खिलाफ साम्राज्यवादी टिप्पणी की तो अनिल अंबानी के मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। रिलायांस इंडस्ट्री ने 2013 में केसिन बेसन 2 से, जो ओ0 एन0 जी0 सी0 ने खोजा था 1100 करोड की गैस चुरा ली थी। जे0 एन0 यू0 के प्रो0 एवं प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अरूण ने लेखक को बताया कि आज हमारे पूंजीपतियों के हित राष्ट्रवाद से मेल नहीं खाते। जगुआर का अधिग्रहण करने के बाद टाटा की परिसंपतिया विदेश में ज्यादा है। राष्ट्र एक भौगोलिक अवधारणा है। जबकि पूंजी का रूप अन्तर्राष्ट्रीय हो चुका है। पूंजी के इस स्वरूप ने राष्ट्र को आघात पहुंचाया है। वह राष्ट्रीय बंदिशों और शर्तों को मानने से इंनकार कर देती है। हाल के दिनों में चर्चित पूंजीपति विजय माल्या का उदाहरण हमारे सामने है। इस स्थिति में साम्राज्यवादी लूट और स्वदेशी लूट में कोई अन्तर नहीं रहता आज पंतजलि बड़े ब्रांड के रूप में उभर रहा है। क्या हमारे पास कोई ऐसा मैकनिज्म है किं जो सरप्लस पूंजी उसके पास आती है वह कागजी संपति की ओर ने जाये। अर्थशास्त्र का मूल सिद्धांत है कि पूंजी से पूंजी का निर्माण करने की बजाय, पूंजी उत्पादन के माध्यम से पूंजी को निर्मित करे। स्वदेशी की अवधारण मुनाफे की बजाय कर्त्तव्य को लेकर ज्यादा चलती है।

साम्राज्यवाद इतनी आसानी से पीछा नहीं छोडता। वह हमारी चेतना में घुसकर हमारी प्रतिरोध करने की शक्ति को कुंद कर देता है। वह भाषा और संस्कृति के माध्यम से अपनी पैठ बनाता है। ऑउटसोरसिंग के जरिए कॉल सेंटर में काम करने वाले नागरिकों के नाम तक बदल देता है। वह हरीश का हैरी और कृष्ण का कृश बना देता है। हम खंडित मानसिकता के साथ जीने को अभिशप्त हो जाते है। हमे पता नहीं चलता किससे लड़े हरीश से या हैरी, से कृष्ण से या कृश से। वह हमें कनफ्यूज कर देता है। लेखक एक दिन कुरूक्षेत्र के शापिंग मॉल में खड़ा था। जॉन प्लेयर ब्रांड को रखने वाली दुकान में इंग्लिश म्यूजिक चल रहा था। पूछने पर कर्मचारी ने बताया कि कंपनी की ओर से निर्देश है कि दुकान पर हिन्दी संगीत की बजाय इंगलिश संगीत बजाया जाए।[6] असल में पूंजी/वस्तुएं अकेली नहीं आती विचारधारा और संस्कृति साथ लेकर आती है जो स्वदेशी भावना/संस्कृति डकार जाती है। अर्थशास्त्री ग्रेशम ने कहा था नकली सिक्के असली सिक्कों को बाजार से बाहर कर देते है।

कल्चर एंड इंपीरिएलिज्म के लेखक एडवर्ड सईद लिखते मानव इतिहास में शायद ही कभी एक संस्कृति द्वारा दूसरी संस्कृति पर इतने बड़े पैमाने पर और इतने प्रभावशाली ढंग से ताकत और विचारों का हस्ताक्षेप हुआ हो, जितना आज अमेरिका द्वारा शेष दुनिया पर हो रहा है। लेकिन यह भी सही है। कि मुख्यरूप से हमने अपने को कभी भी शायद इतना विखंडित, तीक्षण रूप से पराजित और पूर्ण रूप से इतना क्षुद्र महसूस नहीं किया जितना आज इस बात को लेकर करते है कि हमारी असली सांस्कृतिक अस्मिता क्या है।

आर्थिक उपनिवेशवाद और सांस्कृतिक उपनिवेशवाद जुड़वाभाई है। साम्राज्यवादी देश शोषण को चिरस्थायी बनाने के लिए उपनिवेशों की जनता की मानसिकता का अनुकुलन करते है। वे उनकी भाषा ओर संस्कृति को हाईजैक करते है। जब किसी देश की सोचने समझने और कल्पना करने की शक्ति को पोथरा कर दिया जाता है तो उसके विकास के रास्ते बन्द हो जाते है। वहां हल्के फुल्के सुधार तो दिखाई देते है। लेकिन क्रांन्तियां नहीं होती। जन समूदाय का मानस बदल नहीं पाता। समाज में आधुनिक लक्षण तो दिखाई देते है। लेकिन आधुनिकता नहीं। अर्थव्यवस्था में औद्योगिक वृद्धियां दिखाई देती है। औद्योगिक क्रान्ति नहीं। हाईजैक राष्ट्र अपने मालिक को सम्मान और आकाक्षां की दृष्टि से देखता है और उसकी जनता में उनके जैसे बनने और दिखने की धुन सवार होती है। प्रसिद्ध शायर दुष्यंत ने इस मानसिकता पर तंज करते हुए लिखा थाः–

ये रोशनी है हकीकत में एक छल लोगों
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगों
किसी भी कौम की तारीख के उजाले में
तुम्हारे दिन है किसी रात की नक्ल लोगों।

अफसोस की हम यूरोप और अमेरिका की धुंधली फोटोस्टेट कॉपी है। हमारे पास विकास का कोई सपना7 नहीं है। उधार की वस्तुओं, नितियों से विकास का सपना देखने वालों को आगह करते हुए टैगोर ने कहा था अलग–अलग सभ्यताओं की प्राथमिकता अलग–अलग होती है ..... हम भारतीयों को अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि किसी ओर का इतिहास उधार नहीं लिया जा सकता। अपने इतिहास का गला घोटने का मतलब है आत्मघात। बाहर से ली हुई चीजें जीवन को बर्बाद कर देती है।[7]

साम्राज्यवाद के इस मॉडल का जवाब अपनी जमीन पर खड़ा होकर ही दिया जा सकता है। महात्मा गांधी ने इसका विकल्प पेश करने की कोशिश की उन्होंने औद्योगिक सभ्यता के इस रूप को खूनी सभ्यता कहां। यह सभ्यता कुछ देशों के लिए समृद्धि और खुशहाली लेकर आती है तो बहुत से देशों को हाशिय पर धकेल देती है। उन्होंने कहा – मेरा पश्चिमी सभ्यता का विरोध वास्तव में पश्चिमी देशों के उस हेकड़ी पूर्ण दावे का विरोध है कि एशियाई देशों की नियति केवल पश्चिमी देशों की नक्ल करना है। उनमें किसी मौलिक चिंतन या रचना का सामर्थ्य नहीं है।

आर्थिक सुधारों की रजत जयंती के दौर में गांधी दर्शन हमारी स्वदेशी चिंतन की आधार भूमि तैयार कर सकता है। भारत के शिक्षित वर्ग ओर उसकी मानसिकता को लेकर कहा था – शिक्षित वर्ग मौलिक ज्ञान का सृजन, सबर्द्धन, प्रसारक नहीं बल्कि उधार की ली गई अवधाराओं, विचारों ओर

उस पर आधारित व्यवहार पद्धति का पोषक है। औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्त हुए बिना शिक्षित वर्ग स्वायत बुद्धि जीवियों को जन्म देने में अक्षम है। यही कारण है कि भारत के विश्वविद्यालय मानसिक रूप से गुलाम वर्ग को पैदा करने वाले कारखानों में तबदील हो गए। औपनिवेशिक व्यवस्था ने ज्ञान और ज्ञान केन्द्रों को मानसिक गुलामी का जामा पहना दिया है। जरूरत है इससे मुक्त होने की तथा विदेशी उपनिवेशवाद के साथ–साथ आंतरिक उपनिवेशवाद को खत्म करने की।

संदर्भः–

1.डॉ0 मनमोहन सिंह प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं पूर्व प्रधानमंत्री, 24 जुलाई 1991 में संसद में कहा – हर विचार का एक समय होता है फिर उससे आने से कोई नहीं रोक सकता। भूमण्डलीकरण समय की मांग है।

2.देखे पूर्ण चन्द जोशी आजादी की आधी सदी स्वप्न और यथार्थ, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं0 2003, पृ0 65।

भारत के अन्दर शहर और गांव और ग्राम के अन्दर एक और नव समंती एवं नव पूंजीवादी, नव धनाढ्यों और दूसरी और उत्पीडित शोषित, कम भूमि वाले, या भूमि हीन, श्रमजीवि, गरीबों के विशाल जनसमूह के बीच तेज होता आंतरिक विभाग ओर दरार जो आंतरिक औपनिवेशीकरण की तीव्र होती एक नई प्रक्रिया का संकेत है..... पूंजीवाद की यह दिशा नव उपनिवेशवाद की दिशा है। इस अप्रिय सत्य को स्वीकार किए बिना हम इस घटनाक्रम को उसकी समग्रता में नहीं अभीव्यक्त कर सकेंगे।

3.देखे प्रभात पटनायक गुलामी के चक्रव्यूह में भारतीय अर्थव्यस्था, अनुवादक तरूण कुमार ग्रंथ शिल्पी, सं0 2014, पृ0 55।

तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्था को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने की उम्मीद में पूंजी के मुक्त प्रवाह के लिए खोलने से उत्पादक पूंजी का उतना आप्रवाह नहीं होगा जितना कि यह प्रत्याशित हॉट मनी के आप्रवाह के चक्रवात में फस जाऐगी। तब निवेश को (यानी अतर्राष्ट्रीय सटोरियों) के विश्वास को बनाऐ रखना सरकार की निति महत्वपूर्ण बन जाती है .....इस प्रकार के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश जो आते है। मुख्यरूप से घरेलू बाजार की बजाऐ विश्व बाजार की और उन्मुख होते है। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था का विऔद्योगिकरण होता है ओर अर्थव्यवस्था पर विदेशी नियंत्रण बढ़ता है।

4.देखे सम्पादक अभय कुमार दुबे, भारत का भूमण्डलीकरण, वाणीप्रकाशन, 2008 पृ0 35।

विकास का जो रास्ता चुना गया था। वह पूंजी की सघनता वाला था लगभग हर विकाशील देश के पास निवेश के लिए पूंजी की कमी थी। इस निवेश के अन्तराल को पूरा करने के लिए विदेशी पूंजी की चाह बढ़ती जा रही थी। गैर पूंजीवादी भूमण्डलीकरण की विफलता ओर निवेश अन्तराल की समस्या का फायदा उठाकर पूंजीवादी भूमण्डलीकरण ने विश्व व्यापार के दायरे में लगभग सारी दूनिया को घसीट लिया है।

5.सम्पादक रामशरण जोशी, वैश्वीकरण के दौर में समयान्तर प्रकाशन, नई दिल्ली भूमिका से।

6.देखे अजय तिवारी, आधुनिकता पर पुनर्विचार, भारतीय ज्ञानपीठ, सं0 2012, पृ0 8।

पश्चिम की अवधाराणाओं को ज्यों का त्यों अपनाकर ज्ञानी बने फिरना उपनिवेश बनकर गर्व करने जैसा है। प्रकृति विज्ञान और सामाज विज्ञान में ऐसा उपनिवेशीकरण बहुत अधिक है। लेकिन मानविकी (भाषा साहित्य और सांस्कृति) भी इससे अछूता नहीं है। भूमण्डलीकरण के साथ बौद्धिक उपनिवेशीकरण बढ़ भी रहा है ओर बढ़ाया जा रहा है। इस प्रकार के बौद्धिक और सांस्कृतिक उपनिवेशीकरण के विरूद्ध लैटिन अमेरिका ओर अफ्रीका के देशों में जबर्दस्त अभियान चलाया गया। जिसे मस्तिस्क का निरूपनिवेशीकरण कहा गया है। भारत में ऐसे अभियान की अवश्यकता अब भी बनी हुई है। बल्कि बढ़ रही है।

7.पाश – बहुत बुरा होता है किसी के सपनों का मर जाना।

8.डॉ. राजकुमार, हिन्दी की साहित्यिक संस्कृति और भारतीय आधुनिकता राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं0 2015 पृ0 65।